मध्यप्रदेश में मध्यान्ह भोजन योजना

बच्चों की योजना के बड़े सवाल

♦ **सचिन कुमार जैन**

आज यह सवाल विकराल रूप ले चुका है कि क्या वास्तव में मध्यान्ह भोजन योजना गरीबी और उपेक्षा के साये में जी रहे बच्चों को शिक्षा और पोषण का बुनियादी अधिकार दिला पा रही है? यह सवाल इस योजना के वर्तमान स्वरूप और चरित्र के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाता है। मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले के गोठरा-कपूरा गावं के सरकारी स्कूल में 108 बच्चों पर एक शिक्षक की नियुक्ति है। शिक्षक गजराज सिंह गुर्जर इस गांव से 33 किलोमीटर दूर *पेड़ा* में रहते हैं और माह में दो से तीन दिन ही स्कूल का भ्रमण करते हैं। यही वे दिन होते हैं जब बच्चों को भी मध्यान्ह भोजन मिल पाता है। स्कूल के पालक-शिक्षक संघ के अध्यक्ष श्यामलाल आदिवासी ने बहुत कोशिशें की पर व्यवस्था के लापरवाह और भ्रष्ट चरित्र के चलते कोई बदलाव नहीं हुआ। उन्हें पता है कि अध्यक्ष, यानि उनके, हस्ताक्षर राशन की रसीद पर नहीं है फिर भी शिक्षक नियमित रूप से राशन प्राप्त करते हैं। पर वे शिकायत नहीं करते; क्या होगा, ज्यादा से ज्यादा निलंबित होगा। चार साल पहले भी वह निलम्बित हुआ था तब एक साल तक स्कूल बंद रहा था। प्रशासन ने कोई नई नियुक्ति नहीं की और बाद में गजराज सिंह को ही बहाल कर दिया। कुछ नहीं बदला।

यह माना गया था कि मध्यान्ह भोजन योजना द्विपक्षीय उद्देश्यों पर कारगर हो सकती है, इससे प्राथमिक शालाओं के बच्चों को पोषण मिलेगा जिससे उनका बेहतर शारीरिक और मानसिक विकास होगा और दूसरी ओर यह योजना स्कूलों में बच्चों का नामांकन और उपस्थिति को बढ़ाने में कारगर होगी। परन्तु मध्यप्रदेश में शिक्षा व्यवस्था के चरमरा जाने, योजना में भ्रष्टाचार, भोजन की गुणवत्ता और मात्रा में कमी और अन्य क्रियान्वयन सम्बन्धी दिक्कतों के कारण योजना के लिये खतरा उत्पन्न हो रहा है। सर्वोच्च न्यायालय में दाखिल शपथ पत्र के अनुसार राज्य के सौ फीसदी प्राथमिक स्कूलों में इस योजना का क्रियान्वयन हो रहा है किन्तु स्कूल में शिक्षक ही नहीं आते हैं तो दोपहर का भोजन बच्चों को कैसे मिले? जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के येल फाक्स अध्ययनकर्ता निकोलस रॉबिन्सन द्वारा मध्यप्रदेश में किये गये एक ताजा अध्ययन में बड़वानी जिले के सेंधवा विकासखण्ड के चार शिक्षकों ने स्पष्ट कहा कि प्रशासनिक स्तर पर दाल, सब्जी और मसाले के लिये स्वीकृत राशि में से दस फीसदी हिस्सा अफसरों के लिये तय है। इसके बिना राशि ही जारी नहीं होती है। और इस राशि को समायोजित करने के लिये उन्हें स्कूल में बच्चों की ज्यादा उपस्थिति दर्ज करने का सुझाव दिया गया है। अमझिरी गांव के लोग जानते हैं कि स्कूल के शिक्षक बच्चों के लिये आवंटित अनाज बेच रहे है पर वे यह नहीं जानते है कि इसके लिये क्या और कहां कार्रवाई की जाये। किसी भी स्थिति में शिक्षक की शिकायत करना उनके लिये जोखिम भरा कदम है क्योंकि वही कई सरकारी कामों का प्रभारी हैं, बीपीएल सर्वे भी वही करता है छात्रवृत्ति के लिये बच्चों का चयन, स्कूल के परीक्षा परिणाम जैसे महत्वपूर्ण निर्णयात्मक अधिकार उसके पास हैं। ऐसी स्थिति में गांव के लोग दुविधापूर्ण स्थिति में फंस जाते हैं। जरूरी यह है कि सरकार और प्रशासन स्वप्रेरणा से इस सम्बन्ध में कदम उठायें। इस भ्रष्ट व्यवस्था के चलते दो तरह की संकटपूर्ण स्थितियां अस्तित्व में आ रही हैं। एक तो बच्चों को पोषण नहीं मिल रहा है तो वहीं दूसरी ओर स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति 90 से 100 फीसदी दर्ज की जा रही है, जो कि सही नहीं है। इससे शिक्षा के लिये होने वाले सरकारी प्रयास भी शिथिल पड़ रहे हैं पर दावे फूल रहे हैं। योजना में हिस्सा-बांटी के व्यवहार का प्रभाव धरातल पर भी साफ नजर आता है। रानीपुरा गांव के शिक्षक-पालक संघ के तत्कालीन अध्यक्ष ने अफसरों को कोई भी राशि देने से मना किया तो वर्ष 2005 में वहां के स्कूल में एक भी दिन भोजन का वितरण नहीं हुआ। वर्ष 2006 में सात महीने के लिये ही राशि आई। वर्ष 2007 में अनाज तो मिला पर राशि नहीं, तो ऐसे में उन्होंने कुछ अनाज बेचकर दाल-सब्जी-मसालों की जरूरत पूरी की। इसके कारण एक माह में बच्चों को ज्यादा से ज्यादा दस दिन ही भोजन मिल पाया। चूंकि इस गड़बड़ झाले में कोतवाल (यानी जिन्हें कार्रवाई और निगरानी करना है) भी शामिल है तो ऐसे में शिकायतों पर कार्रवाई की उम्मीद नहीं की जाती है। देखा जाये तो एक तरीके से सरकार ने ही इस योजना में कुछ ऐसी कमजोर कड़ियां छोड़ रखी हैं जिनसे यह मजबूत नहीं हो पा रही है। इस योजना में सरकार रसोइयों का खूब जमकर शोषण कर रही है। प्रावधान यह किया गया है कि रसोइये को मानदेय के रूप में एक बच्चे का भोजन बनाने के एवज में 45 पैसे की

राशि दी जायेगी। इसमें भोजन पकाने के लिये लगने वाले ईंधन की राशि भी शामिल है। वास्तव में रसोइये को 25 पैसे प्राप्त होते हैं। सिवनी जिले के भोंडकी गांव के सरकारी स्कूल में नवम्बर 2006 में रसोइये ने खाना पकाना बंद कर दिया क्योंकि यहां 21 बच्चों के लिये खाना पकाकर उसे कुल 9 रूपये मिल रहे थे जिसमें से चार रूपये ईंधन पर खर्च होते रहे। तब हर परिवार ने छह रूपये प्रतिमाह के हिसाब से योगदान देना शुरू किया। इससे रसोइये को 15 रूपये रोज मिलना शुरू हुये। राज्य के ज्यादातर हिस्सों में रसोइयों को मिलने वाली राशि की समस्या से भोजन की गुणवत्ता भी प्रभावित हो रही है। यह एक या दो गांवों का मामला नहीं है बल्कि हजारों स्कूलों की यह स्थिति है और विडम्बना यह है कि इसी स्थिति को आधार बनाकर मध्यप्रदेश सरकार मध्यान्ह भोजन योजना का निजीकरण कर रही है। प्रदेश के शहरी इलाकों के साथ-साथ अब तो ग्रामीण इलाकों में भी सरकार ने नांदी फाउण्डेशन नामक संस्था को भोजन आपूर्ति के ठेके दे दिये हैं। इस कदम से सामाजिक समरसता पैदा करने वाले उद्देश्य को तो सरकार ने योजना से ही बाहर कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश हैं कि *मध्यान्ह भोजन योजना में खाना पकाने के काम में दलित, आदिवासी और वंचित वर्गों को दायित्व सौंपा जाये*। मकसद यह है कि जब दलित व्यक्ति द्वारा पकाया हुआ भोजन सभी वर्गों के बच्चे एक साथ बैठकर खायेंगे तो इससे भेदभाव और छुआछूत की स्थितियों में बदलाव आयेगा किन्तु यह मकसद अब उपेक्षा का शिकार होता नजर आ रहा है।

अब तो स्कूलों में भोजन समायोजन की नीति अपनाई जा रही है। भोजन के बरखेड़ी प्राथमिक बालक विद्यालय में 215 बच्चों की उपस्थिति होने पर भी वहां 115 बच्चों के लिये ही खाना पहुंचाया गया जबकि रशीदिया माध्यमिक शाला में भी 215 बच्चे हैं पर मात्र 127 बच्चों के लिये खाना दिया गया। बाहरी और निजी संस्था को भोजन की केन्द्रीयकृत जिम्मेदारी दिये जाने के कारण भी यह विसंगति सामने आई कि बच्चों की उपस्थिति के अनुरूप भोजन की मात्रा स्कूल नहीं पहुंच पाती है।

समुदाय की अपेक्षा है कि इस योजना को साल मे 200 दिन तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिये। बड़ी विचित्र सी स्थिति हो जाती है जब महीने में उन्हें आठ से दस दिन भोजन नहीं मिलता हे। यदि एक बार यह तय हो जाये कि बच्चों को दोपहर का भोजन स्कूल के दिनों में तो हर रोज मिलेग ही, तो इससे मजदूरी करने वाले परिवारों को अपनी व्यवस्था बनाने में आसानी होगी। आमतौर पर बच्चे इसलिये भी स्कूल नहीं आते हैं क्योंकि उन्हें घर में छोटे बच्चों की देखभाल करना होती है। झाबुआ जिले के कुछ गांव में तो अब बच्चे अपने छोटे-छोटे भाई बहनों को साथ लेकर ही स्कूल आ रहे हैं। ऐसे में जरूरत इस बात की है कि सरकार दिनों या भोजन की मात्रा की सीमायें तय न करे बल्कि इस योजना की महत्ता और व्यापकता को स्वीकार करे।

दोपहर में बच्चों को एक बार खाना तो मिलने की संभावना रहती है किन्तु पीने का पानी अब भी एक बड़ी चुनौती है। राज्य के 81 हजार प्राथमिक स्कूलों में से आज भी 22 हजार स्कूलों में पीने के साफ पानी की स्थाई व्यवस्था नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने 20 अप्रैल 2004 को अपने आदेश में कहा है कि स्कूलों में अधोसंरचना की स्थिति और सुरक्षित पीने के पानी की स्थाई व्यवस्था की जाना चाहिये। इस आदेश के बाद भी बड़वानी के छचर्या गांव के स्कूल में 525 बच्चे स्कूल में पीने के पानी की व्यवस्था न होने के कारण वे गांव के उसी हैण्डपम्प पर जाते हैं, जिसका उपयोग पूरा गांव करता है। धावली गांव में तो खाना पकाने के लिये भी डेढ़ किलोमीटर दूर से पानी लाना पड़ता है। राहरोन गांव (श्योपुर) के सभी हैण्डपम्प रखरखाव के अभाव में एक साल पहले से ही बंद पड़े हैं। शिकायतों के बाद भी प्रशासन ने कोई खोज-खबर नहीं ली। आज सभी गांव वाले और स्कूल के बच्चे एक किलोमीटर दूर बहने वाली नदी (जो कि दूषित है) के पानी का उपयोग करने जाते हैं। आज स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति बढ़ने का एक बड़ा कारण मध्यान्ह भोजन योजना भी है किन्तु जिस तरह की बुनियादी समस्याओं के जाल में यह प्रयास फंसता जा रहा है उससे शिक्षा और पोषण के अधिकार के लिये हो रहे प्रयास नकारात्मक रूप से प्रभावित होंगे। आज इस प्रयास को सार्थक बनाने के लिये सुनियोजित और धरातल की वास्तविकताओं पर आधारित व्यवस्था की जरूरत है। जब स्कूलों में शिक्षक ही ठेके पर काम कर रहे हैं तो उनकी कोशिश यही रहेगी कि उनका अनुबंध निरन्तर बना रहे। दिक्कत यह है कि यह अनुबन्ध उनकी अच्छी कार्यशैली और मेहनत से नहीं बल्कि भ्रष्टाचार और राजनैतिक प्रभुत्व से जुड़ा हुआ है। यह योजना केवल समुदाय और पंचायत की सहभागिता से ही सार्थक परिणाम दे सकती है। बहरहाल सरकार को यह जरूर देखना होगा कि बजट और व्यवस्था व्यावहारिक और जरूरत के मुताबिक हो।